संपादक की कलम से.....

गीतों का क्षितिज

राम अवतार बैरवा

कहते हैं जीवन में कोई भी चीज़ स्थायी नहीं है। नामालूम ये जहान भी पहले कुछ अलग तरह का रहा हो । नामालूम इंसान और जीव-जंतु भी अलग तरह के हों। नामालूम शासन और सत्ता भी अलग तरह की हो । केवल साहित्य ही है, जिस पर सवाल नहीं उठ सकता। वो कमतर या बेहतर हो सकता है पर वह हमेशा जन-जीवन की रक्षा, स्मृद्धि, बेहतरी और नई राह दिखाने के लिए रहा है। अधिक पहले न जाकर मौजूदा तथ्यों की बात की जाए तो जैसा अवसाद, जैसी अनुभूति और जैसी चेतना तुलसी और कबीर के समय थी, वो निराला और गुप्त के समय नहीं रही । जो निराला और गुप्त के समय थी, वो आज तक के रचनाकारों में नहीं रही । किशन सरोज का गीत 'वह देखो ! कोहरे में चंदन वन डूब गया।' के साथ ही जैसे हिन्दी गीतों का सारा वैभव, वंदन और चंदन डूब गया। आकाशवाणी से किसन सरोज का यह गीत अनेकों बार प्रसारित हुआ। नई कविता और नवगीत में कई बड़े नाम सामने आए पर वो पुरानी लय नहीं पा सके । न उन्हें पढ़कर मन के मयूर में कोई स्पंदन हुआ न ही उमंग जगी । बहुत से श्रेष्ठ गीतकार या तो नई कविता की ओर मुड़ गए या ग़ज़ल की ओर । कोशिश हरदम होती रही । आज भी हो रही है। बहुतों ने बहुत बेहतरीन कोशिश की, नाम गिनाएं जाएं तो दूर-दराज के बहुत सारे नाम छूट भी सकते हैं। इस अंक में भी किसी भी दृष्टि से कमजोर नहीं ।

गीत के ह्रास का बड़ा कारण यह भी रहा कि वे शब्दों से उतरकर गले पर आ टिके। जिनका गला और प्रस्तुति सही थी, वो तुकबंदी में उलझकर रह गए, उनके शब्द, भाव और विचार कमजोर होते चले गए। जिनके पास यह सब कुछ था, उन्हें पत्र-पत्रिकाओं में तो भरपूर स्थान मिला मगर मंच नहीं। गीत का पहला मापन 'गान' रहा। इसीलिए पत्र-पत्रिकाओं के अच्छे गीत भी बेसुरे रहकर सुनहरे पृष्ठों में दब गए और मंच के बेतुके गीत भी सुरमई हो गए । अज्ञेय के बाद छंद मुक्त कविताएं बहुत प्रभावशाली होकर सामने आई। इसने भी गीत को पीछे धकेलने में अहम भूमिका निभाई। अनेक वर्षों तक नई कविता काव्य की धड़कन बनी रही, काव्य क्षेत्र के अधिकांश सम्मान इसी विधा के नाम रहे । मंच की कविता ने तो लगभग गीतों को खत्म ही कर दिया। वहां श्रोता और दर्शक मनोरंजन के लिए जाने लगे। उन्होंने हास्य और देशभक्ति के अलावा दूसरी तरह की कविता को स्वीकारा ही नहीं - यह गीत का अंत समय था । अनेक बार अच्छे गीत और अच्छे गीतकार लालकिले सरीखे मंच पर अपनी पहचान तलाशते रह गए। यहां मार्क्सवाद को बीच में लाकर नई बहस को जन्म देना बिल्कुल उचित नहीं मानता ।

यह अवश्य सत्य है कि गीत से काव्य की अन्य विधाओं की तुलना नहीं की जा सकती। गीत को निश्चित बंधनों में अधिक स्पष्ट और सहजता के साथ लिखा जाता है । मंचों के लिए सरलता एक ओर शर्त बनकर श्रोताओं के हृदय तक उतरने का प्रयास करती है। वहां गीतों को अलग तरह के समझौते करने पड़ते हैं । नवगीतों ने अवश्य मंच से परे साहित्यिक बनकर इस विधा को बड़ी ताकत और सार्थकता प्रदान की है। कुछ इधर के गीतों ने भी बड़ा प्रभाव छोड़ा है -

'ओ री चिरैया नन्ही सी चिड़िया
अंगना में फिर आजा रे।'
या 'चम्बा कितनी दूर।'

सबसे बड़ा और कभी ने भरने वाला नुक्सान गीत के क्षेत्र में यह रहा कि लोकगीत सिरे से गायब हो गए। जिनमें हमारी संस्कृति, समाज, परम्परा और जीवन मूल्य झलकते थे, जिनमें विचार भी थे और मौज-मस्ती भी और जिनमें दूर-दराज के गांव अपने होने को महसूस करते थे। अब उनके लौटने की कोई संभावना है भी नहीं। न अब वो बरखा रही, न पेड़-पौधे, न मोर, पपीहे। न ही उस तरह का सावन, न बागों में वो खुश्बू रही, न भोजन में वो स्वाद । अब तो यह भी नहीं पता कि लोग जी किसलिए रहे हैं। न जीवन का उद्देश्य रहा, न लक्ष्य। साहित्य रहता है तो हर संभावना बनी रहती है। गीत तो होते ही आने वाले कल को सहारा और आसरा देने के लिए हैं। अभी अंधियार उतना भी नहीं है। उम्मीद हर निराशा का प्रतिकार करती है और क्षितिज अनगिनत आयामों के सफर की राहें तय करता है। गीतों का क्षितिज अपार है, उसकी दिशाएं अनंत हैं, उसका उजास अनंत है, उसका रहस्य सातों आसमां पार कर सकता है।